दैनिक भास्कर

Date:29-12-22

संवैधानिक संकट में फंसतीं राज्य सरकारें

संपादकीय

तमाम राज्यों की सरकारें या राजनीतिक दल किसी एक वर्ग को आरक्षण देने की घोषणा करते हैं लेकिन उसके लिए अपेक्षित शर्तें पूरी नहीं करते। लिहाजा कोर्ट्स उनके कानून को निरस्त कर देते हैं और तब यह चुनावी मुद्दा बन जाता है। उत्तर प्रदेश में हाई कोर्ट ने सरकार की उस अधिसूचना को गलत करार दिया जिसके तहत ओबीसी के लिए स्थानीय निकायों में सीटें आरक्षित की गई। कोर्ट का कहना था कि 10 साल पहले सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ द्वारा आदेशित ट्रिपल टेस्ट की शर्तों की- जिस पर पिछले वर्ष दोबारा उस कोर्ट ने मोहर लगाई- अनदेखी करके सीटें आरक्षित की गईं, जो गलत था। आखिर ट्रिपल टेस्ट की शर्तें बगैर माने ये सरकारें क्यों आरक्षण करती हैं? क्या इनकी मंशा आरक्षण देने से ज्यादा उस वर्ग के वोट लेना होता है? अब राज्य सरकार के सामने इस फैसले के बाद एक संवैधानिक संकट है। फैसला आने के तत्काल बाद मुख्यमंत्री ने ट्वीट किया कि ट्रिपल टेस्ट का अनुपालन होगा और यह भी कि पिछड़ों के हित के लिए सरकार कृतसंकल्प है। यहां प्रश्न यह है कि ट्रिपल टेस्ट को मानते हुए इन पांच वर्षों में आयोग का गठन नहीं करना चाहिए था? पुलिस रिफॉर्म्स के मामले में भी सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ के आदेश को 16 वर्ष बाद भी देश के लगभग सभी राज्यों ने कमोबेश नहीं माना। यह रवैया सरकारों के किस मनोभाव को इंगित करता है?

दैनिक जागरण

Date:29-12-22

फंसे हुए कर्जों से निपटने की चुनौती

ब्रजेश कुमार तिवारी, (लेखक जेएनयू में एसोसिएट प्रोफेसर हैं)

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने बीते दिनों संसद में बैंकों की दशा से जुड़े एक अहम पहलू पर अपनी बात रखी। उन्होंने बताया कि भारतीय रिजर्व बैंक के दिशानिर्देशों और बोर्ड के अनुमोदन के बाद पिछले छह वित्त वर्षों के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) और अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (एससीबी) ने कुल मिलाकर 11,17,883 करोड़ रुपये की राशि बट्टे खाते में डाली यानी उसे राइट आफ किया। केवल 2021-22 में ही वाणिज्यिक बैंकों ने 1,74,966 करोड़ के कर्ज बट्टे खाते में डाले, जिसमें से 33,534 करोड़ की ही वसूली हो पाई। वसूली में नाकाम रहने पर अकेले भारतीय स्टेट बैंक ने ही पिछले चार वित्त वर्षों में 1.65 लाख करोड़ का कर्ज बट्टे खाते में डाला। वस्तुत:, चार साल पुराने ऐसे कर्ज, जिसकी प्रोविजनिंग कर बैंक उसे बैलेंस शीट से हटा देते हैं, वही राइट आफ कहलाता है। हालांकि ये प्रोविजनिंग बैंक अपने स्रोतों से करते हैं और वह स्रोत जनता के पैसे से ही बनता है, क्योंकि बैंकों के पास अपना पैसा तो होता नहीं।

पिछले चार वर्षों में कर्ज चुकाने में जानबूझकर चूक करने वालों (विलफुल डिफाल्टर) की संख्या खासी बढ़ी है। सरकारी बैंकों में विलफुल डिफाल्टर की संख्या 2017 में 8,045 थी, जो 2022 में बढ़कर 12,439 हो गई। वहीं निजी बैंकों में यह संख्या 2017 में 1,616 से बढ़कर 30 जून, 2022 को 2,447 हो गई। भारतीय बैंकों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या बैड लोन यानी फंसे हुए कर्जों-एनपीए की है। पिछले कुछ वर्षों में बैंकों का जो एनपीए घटता हुआ दिखा है तो इसके पीछे ये बट्टे खाते ही हैं। बैंकों द्वारा पांच वर्षों में जितने कर्ज की वसूली हुई, उसके दोगुने से अधिक बट्टे खाते में डाल दिए। बैंक अपनी बैलेंस शीट को साफ-सुथरा रखने और टैक्स लाभ आदि लेने के मकसद से एनपीए को बट्टे खाते में डालते हैं। बैंको का दावा है कि लोन को राइट आफ किए जाने के बाद भी कर्ज वापसी का दबाव डाला जाता है। हालांकि, आंकड़ों के अनुसार 15-20 प्रतिशत से ज्यादा के कर्ज की वसूली नहीं हो पाती। उच्च एनपीए से बैंकों का नेट इंटरेस्ट मार्जिन भी घटने लगता है। उनकी परिचालन लागत भी लगातार बढ़ती जाती है।

सिर्फ 312 बड़े डिफाल्टरों पर कुल बैड लोन का 76 प्रतिशत से अधिक बकाया इस तस्वीर को स्पष्ट करता है। जहां सरकार करदाताओं के पैसों से बैंकों को पूंजी उपलब्ध करा रही है, तो वहीं बैंक भारी-भरकम कर्ज न लौटाने वालों के कर्जों को ठंडे बस्ते में डाल रहे हैं। इन बैड लोन में लगभग 75 प्रतिशत हिस्सेदारी कारोबारी ऋणों की है। जबकि खुदरा ऋणों की हिस्सेदारी केवल चार प्रतिशत है, जिनमें कार लोन, होम लोन और पर्सनल लोन शामिल हैं।

बात साफ है कि बैंकों को एनपीए से बचाना है तो कारपोरेट ऋण देने में बहुत सतर्कता दिखानी होगी। असल में एनपीए बैंकिंग प्रणाली के लिए कैंसर के समान है। इसे कुछ हद तक नियंत्रित तो किया जा सकता है, लेकिन पूरी तरह से खत्म करना असंभव है, क्योंकि अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए कारपोरेट जगत को विशेष सुविधाएं दी जाती हैं। इसके पीछे कारपोरेट जगत से यही अपेक्षा होती है कि वे आर्थिक समृद्धि की बुनियाद रखकर उसे शिखर पर पहुंचाएं। ऐसे में कारपोरेट जगत को इसका बेजा लाभ उठाने से बचते हुए कर्ज चुकाने के प्रति गंभीरता और तत्परता का भी परिचय देना चाहिए। दूसरी ओर यही बैंक वाले किसी आम आदमी के कर्ज की किस्त तीन महीने तो क्या एक महीने जमा न होने पर

कर्जदार को परेशान करने लगते हैं, लेकिन बड़ी-बड़ी संस्थाओं से वसूली पर ध्यान नहीं दिया जाता और उनमें से कुछ तो घोटाले करके विदेश तक भाग जाते हैं।

आइएमएफ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुल कर्जों का 30 प्रतिशत हिस्सा जोखिम में है। बैड बैंक या नेशनल एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड के गठन को बैंकिंग उद्योग के संकट की कुंजी के तौर पर प्रस्तुत किया जाना भी उचित नहीं, क्योंकि कर्ज फंसने पर ही ये उपाय मददगार हो सकते हैं, लेकिन उन्हें फंसने से नहीं बचा सकते। ऐसे में बेहतर यही हो कि कर्ज की पेशकश करते समय बैंक अतिरिक्त सतर्कता बरतें। बैंकों को ऋण मंजूर करने से पहले बड़ी परियोजनाओं के कड़े मूल्यांकन के लिए एक आंतरिक रेटिंग एजेंसी बनानी चाहिए। परियोजनाओं के बारे में पूर्व चेतावनी संकेतों की निगरानी के लिए प्रभावी प्रबंधन सूचना प्रणाली (एमआइएस) को लागू करना भी आवश्यक हो गया है। लेनदार के क्रेडिट इन्फार्मेशन ब्यूरो इंडिया लिमिटेड (सिबिल) स्कोर का मूल्यांकन बैंक के साथ ही आरबीआइ के अधिकारियों को भी करना चाहिए। बैंकों के एनपीए को कम करने के लिए चार्टर्ड अकांउटेंट्स का नियमन एवं नियंत्रण भी अत्यंत आवश्यक है। साथ ही, बैंकों को उन भारतीय कंपनियों को कर्ज देते समय सतर्क रहना चाहिए, जिन्होंने विदेश से भारी कर्ज ले रखा है। बैंकों के आंतरिक और बाहरी आडिट सिस्टम को सख्त करना अपरिहार्य हो गया है। भारत में बैंककर्मी बनने के लिए विशिष्ट कौशल की अनिवार्यता नहीं है। इसलिए बैंकिंग क्षेत्र को एक कौशल विशिष्ट क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत करने की आवश्यकता है। विशेष रूप से इसका उधार देने वाला खंड। कनिष्ठ अधिकारियों को अक्सर गड़बड़ी का जिम्मेदार माना जाता है, लेकिन बड़े निर्णय तो क्रेडिट स्वीकृति समिति द्वारा किए जाते हैं। उसमें वरिष्ठ स्तर के अधिकारी शामिल होते हैं। इसलिए, वरिष्ठ अधिकारियों को जवाबदेह बनाना महत्वपूर्ण है। बड़े लेनदार के पासपोर्ट विदेश मंत्रालय में जमा कराने के साथ ही ऋण विभाग के कर्मचारियों की नियमित अदला-बदली भी फंसे हुए कर्जों के दुष्चक्र को तोड़ने में उपयोगी हो सकती है।

जनसत्ता

Date:29-12-22

जैव विविधता पर मंडराता खतरा

सुधीर कुमार

हाल में चीन की अध्यक्षता और कनाडा की मेजबानी में मांट्रियल शहर में आयोजित पंद्रहवां संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता सम्मेलन 'कुनमिंग-मांट्रियल वैश्विक जैव विविधता रूपरेखा' नामक ऐतिहासिक समझौते के साथ समाप्त हो गया। इसके तहत 2030 तक विश्व में तीस फीसद भूमि, तटीय इलाकों और जल क्षेत्रों का संरक्षण सुनिश्चित करने और जैव विविधता संरक्षण के लिए तेईस लक्ष्य निर्धारित

किए गए। इस सम्मेलन में भी पिछले दिनों मिस्र में आयोजित काप-27 की तरह ही सतत विकास लक्ष्यों को पूरा करने और वैश्विक तापमान को डेढ़ डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के लिए पारिस्थितिकी तंत्र को बचाने पर बल दिया गया। इस समझौते में इस दशक के अंत तक समृद्ध जैव विविधता वाले क्षेत्रों के नुकसान को शून्य के करीब ले जाने, जैव विविधता के करीब रह रहे स्थानीय समुदायों के अधिकारों का सम्मान और संरक्षण, मानव-वन्यजीव संघर्ष को कम करने, पौधों और जीवों के अवैध व्यापार पर रोक लगाने, प्रदूषण को न्यूनतम करने, वैश्विक खाद्य अपशिष्ट को आधा करने और ऐसी आर्थिक सहायता को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने जैसे मुद्दे शामिल हैं जो प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से जैव विविधता के विनाश का कारण बन रहे हैं।

जैव विविधता के संरक्षण पर वैश्विक समुदाय को सचेत होना इसलिए जरूरी है, क्योंकि पर्यावरण क्षरण और जैव विविधता के ह्रास के कारण जलवायविक दशाएं कठोर होती जा रही हैं। दुनियाभर में जिस तेजी से जैव विविधता और पर्यावरण मूल्यों की हानि हो रही है, वह गंभीर चिंता का विषय है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के मुताबिक दुनिया की अनुमानित अस्सी लाख वनस्पतियों और जीवों की प्रजातियों में से दस लाख विलुप्त होने के कगार पर हैं। यह चिंता का विषय इसलिए भी है क्योंकि प्राणवायु, भोजन, स्वास्थ्य, आजीविका और समृद्धि के विभिन्न साधनों के लिए हम किसी न किसी रूप से जैव विविधता पर आश्रित हैं। प्रकृति मानवता की पोषक है, लेकिन पारिस्थितिकी तंत्र में गिरावट वैश्विक आबादी के चालीस फीसद तबके के कल्याण को प्रभावित कर रही है।

धरती पर पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित रखने और जीवन की निरंतरता को बनाए रखने में जैव विविधता की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण है। जैव-विविधता से तात्पर्य धरती पर मौजूद जीवों और वनस्पतियों की विभिन्न प्रजातियों से है। जैव-विविधता के बिना धरती पर जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जीवों की विविधता ही धरती पर जीवन के लिए अनुकूल परिवेश का निर्माण करती हैं। इसकी संपन्नता जहां मानव जीवन को सुदीर्घ और सेहतमंद बनाती है, वहीं विलुप्त होती जैव विविधता धरती को विनाश की ओर ले जाती है। हालांकि बढ़ती जनसंख्या, मृदा का घटना, जंगलों की कटाई, बिगड़ता पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन और बढ़ती औद्योगिक गतिविधियों से जैव-विविधता का तेजी से क्षरण हो रहा है। लिहाजा जैव विविधता पर मंडराता खतरा मानव अस्तित्व के लिए भी जोखिम बढ़ा रहा है। ऐसे में जैव विविधता के नुकसान का मानव स्वास्थ्य और जीवन पर बुरा असर पड़ रहा है। इससे मानव का सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास प्रभावित हो रहा है। ऐसे में जरूरी है कि जैव विविधता के रूप में मानव जीवन के आधार को संरक्षित करने पर विशेष बल दिया जाए।

गौरतलब है कि दुनिया की सत्तर फीसद जैव विविधता केवल सत्रह देशों में पाई जाती है। इनमें भारत भी शामिल है। भारत का क्षेत्रफल दुनिया के कुल क्षेत्रफल का महज 2.4 फीसद है, लेकिन यहां वन्यजीवों की लगभग इक्यानबे हजार और वनस्पतियों की पैंतालीस हजार प्रजातियां पाई जाती हैं। जैव-विविधता का यह विशाल स्वरूप पारिस्थितिक-तंत्र को संतुलित रखने और मानव जीवन को अनुकूल बनाने में काफी मददगार साबित हुआ है। विभिन्न प्रकार के पौधों और जीवों की विस्तृत शृंखला स्वस्थ पारिस्थितिकी प्रणाली के निर्माण में सहायक है। मसलन, पेड़-पौधे प्राणवायु का संचार करते हैं और वायुमंडल से कार्बन डाइआक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसों का अवशोषण कर धरती को अतिरिक्त ताप के खतरे से बचाते हैं। वहीं प्रवाल भित्तियां और मैंग्रोव वन चक्रवात और सुनामी से सुरक्षा प्रदान करते हैं। एक तरफ राइजोबियम, एजोटोबैक्टर जैसे जीवाणु और केंचुए जैसे अकशेरुकी जीव मृदा को उर्वर बनाने में सहायक हैं, तो दूसरी ओर गिद्ध सहित हजारों जीव मृत जीवों के अवशेषों का भक्षण कर वातावरण को प्रदूषित होने से बचाते हैं। इस तरह सब के सहयोग से एक स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण होता है। लेकिन अनुचित मानवीय गतिविधियों के दखल से पौधों

और जीवों की कई प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और कइयों का अस्तित्व खतरे में है। मानव समाज के लिए यह एक बड़ी चेतावनी है। अगर समय रहते इन प्रजातियों के संरक्षण के लिए त्वरित और ठोस प्रयास नहीं किए गए, तो इन्हें भी किस्से-कहानियों का हिस्सा बनने में अधिक समय नहीं लगेगा! ऐसी अवस्था में मनुष्य भी अपना अस्तित्व खो देगा।

संयुक्त राष्ट्र ने 2011-2020 अवधि को 'जैव विविधता दशक' घोषित किया था। इसका उद्देश्य जैव विविधता के लिए उत्पन्न खतरों के बारे में जागरूकता बढ़ाना था। जैव विविधता के संरक्षण के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता उन मानवीय गतिविधियों पर लगाम लगाने की है जो जैव विविधता के लिए घातक सिद्ध हो रही हैं। जैव विविधता के संरक्षण के लिए मुख्य रूप से दो रणनीतियां अपनाई जाती हैं। पहली, स्व-स्थानिक (इन-सीटू) संरक्षण विधि, जिसमें राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव अभ्यारण्य और संरक्षित जैव वन शामिल हैं। दूसरी, बाह्य-स्थानिक (एक्स-सीटू) संरक्षण विधि है, जिसमें वनस्पति उद्यान, चिड़ियाघर, बीज बैंक, जीन बैंक आदि शामिल होते हैं। जैव विविधता संरक्षण की इन दोनों विधियों में बुनियादी फर्क यह है कि स्व-स्थानिक संरक्षण में लुप्तप्राय: प्रजातियों को बनाए रखने और उसकी पुनर्प्राप्ति के लिए उनके प्राकृतिक आवासों को संरक्षित किया जाता है, जबकि बाह्य-स्थानिक संरक्षण विधि में संकटग्रस्त प्रजातियों का संरक्षण प्राकृतिक आवासों की तर्ज पर विकसित मानव निर्मित आवासों में किया जाता है। हालांकि जैव विविधता के संरक्षण की ये दोनों ही विधियां लुप्तप्राय: जानवरों और पौधों की प्रजातियों की रक्षा, रखरखाव और पुनर्प्राप्ति में सहायक हैं। स्व-स्थानिक संरक्षण विधि के तहत देश में अब तक सैकड़ों राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव अभ्यारण्य और संरक्षित वन विकसित किए गए हैं। जबकि दूसरी ओर बाह्य-स्थानिक संरक्षण के अंतर्गत देश में बड़ी संख्या में चिड़ियाघर, मछलीघर और वनस्पति उद्यानों की स्थापना हुई है। इनसे जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों की अनगिनत प्रजातियों को संरक्षित करने में मदद मिली है।

जैव विविधता अधिनियम (2002) को लागू करने के लिए 2003 में केंद्र सरकार ने पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अंतर्गत एक स्वायत्त और वैधानिक निकाय के रूप में 'राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण' की स्थापना की थी। इसी अधिनियम के तहत राज्यों में जैव विविधता प्राधिकरण और जैव-विविधता प्रबंधन समिति का गठन भी किया गया था। राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण का काम जैव-विविधता के संरक्षण, इसके घटकों के सतत उपयोग और जैविक संसाधनों व ज्ञान के उपयोग से उत्पन्न होने वाले लाभों के उचित और समान बंटवारे से संबंधित किसी भी मामले पर केंद्र सरकार को सलाह देना, राज्य जैव विविधता बोर्डों को तकनीकी सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करना और अनुसंधान को बढ़ावा देना है। असम, बिहार, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक सहित कुल अठारह राज्यों और दो केंद्र शासित प्रदेशों- अंडमान और निकोबार द्वीप समूह और दादर एवं नगर हवेली-दमन एवं दीव में वनस्पतियों और जीवों की प्रजातियों पर विलुप्त होने का खतरा सबसे ज्यादा मंडरा रहा है। बहरहाल, मानवीय गतिविधियों पर लगाम लगाने के साथ जैव विविधता के संरक्षण हेतु समाज में भी जागरूकता पैदा करनी होगी, तभी हम जलवायु परिवर्तन के खतरे का सामना कर पाएंगे।

राष्ट्रीय सहारा

Date:29-12-22

नेपाल की नई सरकार और भारत

डॉ एन. के. सोमानी

कम्युनिस्ट पार्टी नेपाल-माओवादी सेंटर (सीपीएन-एमसी) के मुखिया पुष्प कमल दहल उर्फ प्रचंड नेपाल के नये प्रधानमंत्री होंगे। रविवार को तेजी से बदले सियासी घटनाक्रम में उस वक्त नाटकीय मोड़ आ गया जब गठबंधन सरकार में शामिल प्रंचड पाला बदल कर ओली के खेमे में चले गए थे। दोनों नेताओं के बीच सरकार निर्माण के साथ-साथ पधानमंत्री पद के लिए प्रचंड के नाम की सहमति बनी। प्रचंड तीसरी बार नेपाल के पीएम बन रहे हैं। पहली बार 2008-09 और दूसरी बार 2016 तक नेपाल के पीएम रह चुके हैं।

नेपाल की 275 सदस्यीय प्रतिनिधि सभा के लिए नवम्बर में चुनाव हुए थे। चुनाव नतीजों में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला। मौजूदा प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा की नेपाली कांग्रेस को सबसे अधिक 80 सीटें मिलीं। ओली की पार्टी को 78 सीट और प्रचंड की पार्टी को महज 30 सीटें मिली हैं। इसके बावजूद वे नेपाली कांग्रेस के साथ गठबंधन में पहले ढाई साल के लिए पीएम बनना चाहते थे। दूसरी ओर, नेपाली कांगेस सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सरकार का नेतृत्व करने पर अड़ी हुई थी। उधर, राष्ट्रपति बिद्या देवी भंडारी द्वारा प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के लिए निर्धारित समय सीमा रविवार को शाम पांच बजे समाप्त हो रही थी। देउबा के साथ बातचीत विफल होने के बाद प्रचंड प्रधानमंत्री पद के समर्थन के लिए कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ नेपाल-यूनाइटेड मार्क्सवादी लेनिनवादी (सीपीएन-यूएमएल) के अध्यक्ष केपी शर्मा ओली के निजी आवाज पर पहुंचे जहां दोनों नेताओं के बीच सरकार निर्माण के फार्मूले पर सहमति हुई। सहमति की शर्त के मुताबिक सीपीएन-यूएमएल समेत छह पार्टियों के समर्थन से प्रचंड पहले ढ़ाई साल के लिए नेपाल की कमान संभालेंगे और अगले ढ़ाई साल के लिए सीपीएन-यूएमएल के नेता केपी शर्मा ओली नेपाल के पीएम होंगे। प्रचंड के ओली के गठबंधन में शामिल होने के बाद नेपाल की तीनों प्रमुख कम्युनिस्ट पार्टियों के नेता प्रचंड, ओली और माधव कुमार नेपाल एक खेमे में आ गए हैं। प्रचंड और ओली, दोनों भारत विरोधी माने जाते हैं। ऐसे में सवाल है कि आने वाले दिनों में भारत-नेपाल संबंध किस दिशा में आगे बढ़ेंगे। यह सवाल इसलिए वाजिब लग रहा है क्योंकि अपने प्रचार अभियान के दौरान ओली कह चुके हैं कि अगर वे सत्ता में आते हैं, तो भारत के क्षेत्र कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा को वापस लेकर आएंगे। ये क्षेत्र सदियों से भारत के पास हैं। अब प्रचंड के साथ ओली सत्ता में हैं, तो निश्चित ही चुनावी वादा पूरा करने के लिए भारत के साथ तनाव को हवा देंगे। दूसरा, ओली की चीन परस्ती पहले से ही जग जाहिर है। हालांकि, नेपाली कांग्रेस के साथ काम करते हुए प्रचंड के भारत विरोध रुख में बदलाव आया है। फिर भी सवाल तो परेशान करता ही है कि अगर प्रचंड का चीन प्रेम जाग उठा तो भारत, नेपाल के रास्ते आने वाली रणनीतिक चुनौतियों से कैसे निबट सकेगा।

नवम्बर, 2019 में जब नेपाल में ओली की सरकार थी, उस वक्त कालापानी इलाके पर नेपाल ने दो टूक कह दिया था कि भारत को इस क्षेत्र से अपनी सेना हटा लेनी चाहिए। उस वक्त भी सवाल उठा था कि ओली की आक्रामक भाषा के

पीछे कहीं चीनी मनसूबे तो काम नहीं कर रहे। हालांकि, 2014 में नरेन्द्र मोदी की नेपाल यात्रा के दौरान तत्कालीन नेपाली प्रधानमंत्री कोइराला ने कालापानी का मुद्दा उठाया था और कालापानी पर नेपाल का अधिकार बताते हुए इसे हल करने की अपील की थी। 1996 में कालापानी इलाके के संयुक्त विकास के लिए महाकाली संधि के तुंरत बाद नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टियों ने कालापानी पर दावा करना शुरू कर दिया। उधर, चीन लंबे समय से इस इलाके पर कब्जा करने की कोशिश करता रहा है। चीन की शह पर ही नेपाल में जब-तब कालापानी को लेकर प्रदर्शन होते रहे हैं। यह वही जगह है जहां भारत 1962 के युद्ध में चीन के समक्ष मजबूती से डटा हुआ था। भारत को डर है कि अगर कालापानी नेपाल के अधिकार क्षेत्र में चला गया तो चीन वहां अपने पांव जमा लेगा। भारत की घेराबंदी में जुटे चीन की भी यही मंशा है।

चीन की महत्वाकांक्षी परियोजना वन बेल्ट वन रोड में सहयोगी होने और व्यापारिक हितों के कारण नेपाल का झुकाव भारत से कहीं अधिक चीन की ओर है। नवम्बर, 2019 में पीएम मोदी ने काठमांडू में हुए बिम्सटेक देशों के सामने सैन्य अभ्यास का प्रस्ताव रखा तो ऐन वक्त पर चीन के दबाव में नेपाल ने सैन्य अभ्यास में शामिल होने से इंकार कर दिया जबकि बाद में उसने चीन के साथ सैन्य अभ्यास में भाग लिया था। भारत और नेपाल के बीच भारतीय सेना की गोरखा बटालियन में गोरखा सैनिकों की भर्ती के मुद्दे पर भी तनातनी की स्थिति बनी हुई है। नेपाल नाराज है कि भारत सरकार ने सेना में भर्ती की अग्निपथ योजना को लेकर उससे चर्चा तक नहीं की। नेपाली विदेश मंत्री नारायण खड़के नेपाल में भारतीय राजदूत नवीन श्रीवास्तव से मिलकर इस योजना के तहत नेपाली युवकों की भर्ती की योजना को स्थगित करने की मांग कर चुके हैं।

नेपाल का आरोप है कि अग्निपथ योजना नवम्बर, 1947 में भारत-ब्रिटेन एवं नेपाल के बीच हुए त्रिपक्षीय समझौते का उल्लंघन है। हालांकि, भारत ने नेपाल को आश्वस्त किया है कि अग्निपथ योजना के सारे फायदे, जो भारतीय युवाओं को मिलेंगे, नेपाल के गोरखाओं को भी हासिल होंगे। थल सेना प्रमुख जनरल मनोज पांडे की नेपाल की पांच दिवसीय यात्रा के दौरान इस मुद्दे को सुलझाने की कोशिश की गई थी लेकिन ऐसा नहीं हो सका। अब भारत ने भी दो टूक कह दिया है कि अगर नेपाली गोरखा अग्निवीर बनने के लिए नहीं आते हैं, तो उनकी खाली जगह को भारत में रह रहे गोरखाओं से भरा जाएगा। अभी 30 हजार से अधिक गोरखा भारतीय सेना में हैं। नेपाल में अग्निपथ योजना के तहत 1300 सैनिकों की भर्ती की जानी है।

हालांकि, भारत और नेपाल, दोनों समान संस्कृति और मूल्यों वाले पड़ोसी हैं। इसके बावजूद दोनों देशों के संबंध निर्धारित दायरे से बाहर नहीं निकल पाए हैं, तो इसकी बड़ी वजह कहीं न कहीं नेपाल का चीन प्रेम ही है। ओली के समर्थन से बन रही नेपाल की नई सरकार भारत के साथ रिश्तों को किस तरह आगे बढ़ाती है, यह अगले कुछ दिनों में स्पष्ट हो जाएगा।

Date:29-12-22

ध्यान खींच रहे मोटे अनाजमुद्दा

रवि शंकर

वर्तमान समय में देश-दुनिया में मोटे अनाजों को लगातार बढ़ावा दिया जा रहा है। सरकारी विज्ञापनों से लेकर संसद के मेन्यू तक हर जगह इनका जिक्र किया जा रहा है। लोगों से अपने आहार में मोटे अनाजों को शामिल करने की अपील की जा रही है। मोटे अनाजों को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने 2023 को मिलेट अर्थात मोटा अनाज वर्ष घोषित किया है। बताते चलें कि इसका प्रस्ताव भारत ने ही रखा था और 72 देशों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था। मोटे अनाजों के बारे में कहा जाता है कि इनकी फसलें प्रतिकूल मौसम को झेल सकती हैं। इन्हें ज्यादा पानी की जरूरत नहीं होती है। भारत के बारे में मशहूर है कि यहां हजारों साल से ये अनाज हमारे भोजन का अनिवार्य हिस्सा रहे हैं। हमारी पीढ़ी, जो पांच-छह दशक पहले बड़ी हो रही थी, में से बहुतों ने बचपन में गेहूं, ज्वार, बाजरा, जौ, मक्का आदि की चूल्हे पर सिंकी स्वादिष्ट रोटियां खूब खाई हैं। बाजरे की खिचड़ी, रोटी और घी मिलाकर बनाए लड्डू, समा के चावल भी भोजन का हिस्सा रहे हैं। तब तो गेहूं की रोटी में भी चने का आटा मिलाकर खाया जाता था, जिसे मिस्सा आटा कहते थे। अकेले गेहूं की रोटी खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता था। सर्दियों में शायद ही कोई दिन होता था, जब मक्का या बाजरा की रोटी न बने, लेकिन गेहूं, चावल की पैदावार में क्रांति और इन्हें खाने वालों की आर्थिक हैसियत को ऊंची बताने के कारण मोटे अनाज हमारी थालियों से लगभग गायब हो गए। अरसे बाद जब ये सुपरफूड के रूप में विदेशों से लौटे और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहने वाले धनाढ्य वर्ग की थाली की शोभा बढ़ाने लगे, तो फिर इनके प्रति दिलचस्पी बढ़ी। यह अच्छा ही हुआ। फिलहाल सरकार भी इनके उत्पादन के लिए किसानों को प्रोत्साहित कर रही है। खान-पान में इन अनाजों को शामिल करने की बात लगातार की जा रही है। मालूम हो, लम्बे समय से मोटे अनाजों की खेती को मुख्य धारा में लाने के लिए कोशिश की जा रही है।

सवाल अहम यह है कि भारत सहित दुनिया के देश मोटे अनाज की खेती पर जोर क्यों दे रही है? जवाब स्पष्ट है, तेजी से हो रहा जलवायु परिवर्तन और बढ़ती जनसंख्या चिंता की बात है, ऐसे में फसलों के उत्पादन में कमी आएगी और खाद्य पदार्थों की मांग में बढ़ोतरी जिसके कारण सभी के लिए खाद्य पदार्थों की आपूंात करना बड़ी चुनौती हो सकती है। जलवायु परिवर्तन के कारण भविष्य में सूखा और अकाल पड़ने जैसी घटनाएं सामान्य हो जाएंगी। मोटे अनाजों की खेती करके अकाल और सूखे की स्थिति से आसानी से निपटा जा सकता है। भारत दुनिया के उन सबसे बड़े देशों में शामिल है जहां सबसे ज्यादा मोटे अनाज की पैदावार होती है। भारत दुनिया के कई देशों को मोटे अनाज का निर्यात करता है। इनमें संयुक्त अरब अमीरात, नेपाल, सऊदी अरब, लीबिया, ओमान, मिस्र, ट्यूनीशिया, यमन, ब्रिटेन तथा अमेरिका शामिल हैं। मोटे अनाजों में भारत सबसे ज्यादा बाजरा, रागी, कनेरी, ज्वार और कुट्टू को एक्सपोर्ट करता है। वैश्विक उत्पादन में लगभग 41 प्रतिशत की अनुमानित हिस्सेदारी के साथ भारत दुनिया में बाजरा के अग्रणी उत्पादकों में शुमार है। इसके बावजूद मोटे अनाजों से बने उत्पाद- बेबीफूड, बेकरी, ब्रेकफास्ट, रेडी टू ईट फूड, रेडी टू कुक, रेडी टू सर्व, वेवरीज और पशु आहार बेचकर चीन दुनिया में मोटी कमाई कर रहा है। यह तब है जब वह दुनिया का मात्र 9 फीसदी ही मोटा अनाज पैदा करता है। खैर, केंद्र सरकार ने बाजरा सहित संभावित उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने तथा पोषक अनाजों की आपूर्ति „श्रृंखला की बाधाओं को दूर करने के लिए पोषक अनाज निर्यात संवर्धन फोरम का गठन किया है। मोटे अनाज की कैटेगरी में ज्वार, बाजरा, रागी (मडुआ), जौ, कोदो, सामा, बाजरा, सांवा, कुटकी, कांगनी और चीना जैसे अनाज आते हैं। इन अनाजों के सेवन से मोटापा, दिल की बीमारियां, टाइप-2 डायबिटीज और कैंसर का खतरा घटाता है। इनमें कई गुना अधिक पोषक तत्व पाए जाते हैं। यही वजह है कि मोटे अनाज को सुपर फूड भी कहा जाता है। मोटे अनाज में सिर्फ फाइबर ही नहीं, बल्कि विटामिन-बी, फोलेट, जिंक, आयरन, मैग्नीशियम, आयरन और कई तरह के एंटीऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं।

मोटे अनाज जहां सेहत के लिए रामबाण हैं तो दूसरी तरफ खेती करने वाले किसानों के लिए भी फायदेमंद हैं। मोटे अनाजों की खेती करके जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा संकट, भू-जल ह्रास, स्वास्थ्य और खाद्यान्न संकट जैसी समस्याओं को काबू में किया जा सकता है। हम उम्मीद कर सकते हैं कि भारत 2023 में जी-20 की अध्यक्षता करते हुए अंतरराष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष 2023 के उद्देश्यों और लक्ष्यों के मद्देनजर देश और दुनिया में मोटे अनाजों के लिए जागरूकता पैदा करने में सफल होगा और इससे मोटे अनाज का वैश्विक उत्पादन बढ़ेगा, मोटे अनाज का वैश्विक उपभोग बढ़ेगा। साथ ही, कुशल प्रसंस्करण एवं फसल चक्र का बेहतर उपयोग सुनिश्चित होगा। भारत द्वारा वर्ष 2023 में मोटा अनाज वर्ष के तहत मोटे अनाजों के प्रति जागरूकता की प्रभावी रणनीति से एक बार फिर मोटे अनाज को देश के हर व्यक्ति की थाली में अधिक जगह मिलने लगेगी।